International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2026; 3(2): 231-234
© 2026 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 24-03-2026
Accepted: 07-04-2026
Publish : 08-04-2026

Dr. Tanmay Mandal
Assistant professor,
Dept. Of Education,
CSU, Shri Sadashiv Campus,
Puri, Odisha

Correspondence:
Dr. Tanmay Mandal
Assistant professor,
Dept. Of Education,
CSU, Shri Sadashiv Campus,
Puri, Odisha

भारतीय दर्शन में चेतना का स्वरूप

Dr. Tanmay Mandal

सारांश: भारतीय दर्शन में चेतना (Consciousness) को एक अत्यंत सूक्ष्म, गहन और मूल तत्व के रूप में देखा गया है, जो केवल मानसिक प्रक्रिया तक सीमित नहीं है, बल्कि अस्तित्व की आधारभूत सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित है। वेदों, उपनिषदों, सांख्य, योग, वेदांत तथा बौद्ध और जैन दर्शनों में चेतना के विभिन्न स्वरूपों और स्तरों का विश्लेषण मिलता है। उपनिषदों में "चैतन्य" को ब्रह्म के रूप में स्वीकारा गया है — वह जो सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और शुद्ध है। सांख्य दर्शन में पुरुष को निष्क्रिय, किन्तु शुद्ध चेतन सत्ता माना गया है, जबकि प्रकृति जड़ है। योग दर्शन चेतना की शुद्धि एवं आत्म-साक्षात्कार की ओर उन्मुख है। अद्वैत वेदांत में चेतना को "अहं" और "संसार" दोनों के पार की सत्ता, ब्रह्म रूप में देखा गया है, जो कि अद्वितीय और निर्गुण है।

यह लेख भारतीय दर्शन के विभिन्न प्रमुख विचार धाराओं में चेतना की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि भारतीय दृष्टिकोण में चेतना न केवल ज्ञान का माध्यम है, बल्कि वह स्वयं ज्ञानस्वरूप है। आधुनिक विज्ञान और पाश्चात्य दार्शनिक विचारों की तुलना में, भारतीय दृष्टिकोण चेतना को केवल जैविक प्रक्रिया नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सार्वभौमिक सत्ता के रूप में देखता है।

भारतीय दर्शन एक ऐसी समृद्ध परंपरा है, जिसमें जीवन, ब्रह्मांड और आत्मा के मूल तत्वों की गहन विवेचना की गई है। इनमें से चेतना (Consciousness) एक केंद्रीय अवधारणा है। चेतना को केवल मानसिक या जैविक प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि ब्रह्मांड की मूल सत्ता के रूप में देखा गया है। भारतीय मनीषियों ने चेतना को न केवल आत्मा का लक्षण माना, बल्कि ब्रह्म की भी पहचान इससे की है।

भारतीय दर्शन में चेतना को जीवन, आत्मा और ब्रह्म की अनुभूति का मूल स्रोत माना गया है। विभिन्न दार्शनिक परंपराओं — विशेष रूप से उपनिषदों, सांख्य, योग, वेदांत, जैन और बौद्ध दर्शन — में चेतना के स्वरूप की गहन विवेचना की गई है।

1. उपनिषदों में चेतना का स्वरूप

भारतीय दार्शनिक परंपरा में **उपनिषदों** को वेदांत का हृदय कहा गया है। यह ज्ञान का वह क्षेत्र है जहाँ ब्रह्म, आत्मा और चेतना के रहस्य को गहराई से उद्घाटित किया गया है। उपनिषदों में चेतना (Consciousness) को ब्रह्म और आत्मा के रूप में देखा गया है – जो सम्पूर्ण जगत का आधार है और व्यक्ति के भीतर विद्यमान है। चेतना को ही *"चैतन्य"* या *"आत्मा"* कहा गया है, जो सर्वत्र व्यापक, शाश्वत और नित्य है।

उपनिषदों में चेतना को आत्मा और ब्रह्म के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। यह चेतना ही जीव, जगत और ईश्वर का मूल है। उपनिषदों का केंद्रीय वाक्य है:

"प्रज्ञानं ब्रह्म" – (ऐतरेय उपनिषद् 3.1.3)

अर्थात् – **प्रज्ञा (चेतना) ही ब्रह्म है।**

यह घोष उपनिषदों की उस विचारधारा को प्रकट करता है जो यह मानती है कि समस्त सृष्टि चेतन ब्रह्म से उत्पन्न हुई है और वही चेतना जीव में आत्मा के रूप में व्याप्त है।

आत्मा को उपनिषदों में "चैतन्यस्वरूप" कहा गया है। आत्मा ही चेतना का केंद्र है – जो शरीर, मन, और इंद्रियों के पार है।

उपनिषदों में चेतना को तीन अवस्थाओं के माध्यम से समझाया गया है:

i) **जाग्रत अवस्था (waking)** – बाह्य जगत का अनुभव।

ii) **स्वप्न अवस्था (dream)** – आंतरिक मन की सक्रियता।

iii) **सुषुप्ति अवस्था (deep sleep)** – जहाँ मन व बुद्धि लीन रहते हैं, पर आत्मा विद्यमान रहती है।

इन तीनों के पार एक चतुर्थ अवस्था का उल्लेख है जिसे "तुरीय" कहते हैं:

"चतुर्थं मन्यन्ते तद्विशेषं..." – माण्डूक्य उपनिषद्

तुरीय अवस्था ही शुद्ध चेतना की अवस्था है – निर्विकल्प, अद्वैत और पूर्ण ब्रह्मस्वरूप।

उपनिषदों के महावाक्य चेतना के अद्वैत स्वरूप की घोषणा करते हैं:

- **"अहं ब्रह्मास्मि"** – मैं ब्रह्म (चेतना) हूँ। *(बृहदारण्यक उपनिषद्)*
- **"तत्त्वमसि"** – तू वही है (चेतना ब्रह्म)। *(छांदोग्य उपनिषद्)*
- **"अयमात्मा ब्रह्म"** – यह आत्मा ही ब्रह्म है। *(माण्डूक्य उपनिषद्)*

इन वाक्यों में चेतना को ही **ब्रह्म** – परम सत्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उपनिषदों में चेतना को ब्रह्म और आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है, जो न केवल जगत का मूल है, बल्कि जीव के भीतर विद्यमान शुद्ध तत्व भी है। यह चेतना कोई विचार नहीं, अपितु अनुभूति का विषय है – जो ध्यान, आत्मनिरीक्षण और आत्मज्ञान के माध्यम से प्रत्यक्ष होती है। उपनिषदों का अंतिम उद्देश्य मनुष्य को उसके शुद्ध चेतन स्वरूप का बोध कराना है – जिससे वह माया के बंधनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सके।

"यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। स ऋतै सत्यां बुद्ध्या प्रज्ञां ब्रह्मणि निष्क्षिप्यति।"

(तैत्तिरीय उपनिषद्)

– जो ब्रह्म चेतना को अपने भीतर खोज लेता है, वही मुक्त होता है।

2. वेदांत दर्शन में चेतना

अद्वैत वेदांत, विशेष रूप से शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित दर्शन में, चेतना को ही एकमात्र सत्य माना गया है। ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः — इस उद्घोषणा में चेतना को ब्रह्म के रूप में स्वीकारा गया। जीव की चेतना और ब्रह्म की चेतना में कोई भेद नहीं है, भेद केवल अज्ञानजन्य है। अद्वैत वेदांत में चेतना को ब्रह्म का स्वरूप माना गया है — सच्चिदानंद (सत् + चित् + आनंद)। शंकराचार्य के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं, और आत्मा की प्रकृति "चित्" यानी चेतना है। यह चेतना निराकार, नित्य, सर्वव्यापी और आत्मस्वरूप है।

3. सांख्य दर्शन में चेतना

सांख्य दर्शन भारतीय दर्शनों में एक प्राचीन और तर्कपूर्ण दर्शन है, जिसकी स्थापना महर्षि कपिल ने की थी। इस दर्शन की विशेषता यह है कि यह द्वैतवाद को मानता है — अर्थात् यह दो मूल तत्त्वों की बात करता है: पुरुष और प्रकृति। चेतना का स्वरूप इसमें पुरुष के माध्यम से परिभाषित किया गया है।

पुरुष: शुद्ध चेतना

सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष ही चेतना का स्रोत है। यह चेतन, निराकार, नित्य, अव्यक्त, अकर्ता और साक्षी स्वरूप है। पुरुष स्वयं कुछ नहीं करता, वह केवल साक्षी रहता है। सभी क्रियाएँ प्रकृति करती है, किंतु उनकी उपस्थिति और अनुभव का आधार पुरुष यानी चेतना है।

प्रकृति: जड़ तत्त्व

प्रकृति अचेतन (जड़) है, परंतु पुरुष के संयोग से उसमें क्रियाशीलता आती है। जब चेतना रूपी पुरुष प्रकृति के साथ संयोग करता है, तब सृष्टि की प्रक्रिया आरंभ होती है। लेकिन वास्तव में पुरुष और प्रकृति दोनों स्वतंत्र और असंग रहते हैं।

बन्धन तब होता है जब पुरुष प्रकृति से अपनी भिन्नता को नहीं समझ पाता और स्वयं को प्रकृति के विकारों से जोड़ लेता है। मोक्ष तब प्राप्त होता है जब पुरुष यह जान लेता है कि वह प्रकृति से भिन्न, शुद्ध चेतना मात्र है। यह ज्ञान ही मोक्ष का मार्ग है।

निष्कर्षतः, सांख्य दर्शन में चेतना को पुरुष के रूप में परिभाषित किया गया है — जो निःस्पृह, निष्क्रिय, किन्तु अनुभूति का आधार है। यह चेतना आत्मस्वरूप है और मुक्ति की प्राप्ति उसी की पहचान से संभव है। सांख्य दर्शन चेतना को दार्शनिक तर्कों के माध्यम से अत्यंत गहराई से समझाने का प्रयास करता है, जो इसे भारतीय दर्शन में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

4. योग दर्शन में चेतना

भारतीय दर्शन में "चेतना" (Consciousness) एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। योग दर्शन, जिसे पतंजलि मुनि ने योगसूत्र में सूत्रबद्ध किया, उस दर्शन परंपरा का एक अंग है जो आत्मा, शरीर, मन और चेतना के बीच संबंधों को विश्लेषित करता है। योग दर्शन में चेतना का स्वरूप आत्मा (पुरुष) के माध्यम से प्रकट होता है, और इसका उद्देश्य अंततः चित्त की वृत्तियों को निरोध कर चेतना की शुद्ध अवस्था को प्राप्त करना है। योग दर्शन सांख्य दर्शन पर आधारित है और उसके प्रमुख तत्त्वों को आत्मसात करता है। इसमें चेतना को 'पुरुष' कहा गया है, जो शुद्ध, निरपेक्ष, निर्विकार और

साक्षी स्वरूप है। यह शरीर, मन, बुद्धि आदि से भिन्न होते हुए भी उनमें प्रतिबिंबित होता है।

योगसूत्र (I.2) में पतंजलि कहते हैं:

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"

अर्थात् — योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है।

यहाँ "चित्त" मन, बुद्धि और अहंकार का सामूहिक रूप है, जो प्रकृति का हिस्सा है। चेतना (पुरुष) स्वयं वृत्तियों में लिप्त नहीं होती, परंतु जब वह चित्त से जुड़ती है, तो उसमें होने वाले परिवर्तनों को अनुभव करती है।

योगसूत्र (II.6) में अहंकार को परिभाषित करते हुए कहा गया है:

"द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः"

अर्थात् — द्रष्टा (पुरुष) और दृश्य (प्रकृति) का संयोग ही बंधन का कारण है।

जब चेतना (पुरुष) स्वयं को चित्त से एक मान लेती है, तब भ्रम उत्पन्न होता है। योग की साधना इस भ्रांति को दूर करने का मार्ग है। चित्त वह उपकरण है जिसमें चेतना प्रतिबिंबित होती है। जब चित्त शांत और निर्मल होता है, तब उसमें पुरुष की वास्तविक चेतना परिलक्षित होती है।

योगसूत्र (I.3) में पतंजलि कहते हैं:

"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्"

अर्थात् — जब चित्त की वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं, तब द्रष्टा (पुरुष/चेतना) अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसका अर्थ है कि वास्तविक चेतना को अनुभव करने के लिए चित्त को संयमित करना आवश्यक है। योग दर्शन के अनुसार, चेतना की शुद्ध अनुभूति के लिए अष्टांग योग का पालन आवश्यक है:

i) यम (नैतिक अनुशासन)
ii) नियम (स्व-अनुशासन)
iii) आसन (शारीरिक स्थिरता)
iv) प्राणायाम (श्वास नियंत्रण)
v) प्रत्याहार (इंद्रिय संयम)
vi) धारणा (एकाग्रता)
vii)ध्यान (ध्यानस्थ स्थिति)
viii) समाधि (पूर्ण तन्मयता)

समाधि की अवस्था में साधक चेतना के शुद्ध रूप का अनुभव करता है – जहाँ "द्रष्टा" और "दृश्य" का भेद मिट जाता है। योग का उद्देश्य उस चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में स्थापित करना है। अतः चेतना के स्वरूप को जानना योग साधना का मूल है।

5. बौद्ध दर्शन में चेतना

बौद्ध दर्शन में चेतना का स्वरूप अत्यंत वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक है। यह चेतना को न तो आत्मा मानता है और न ही उसे स्थायी तत्व के रूप में स्वीकार करता है। चेतना का यह दृष्टिकोण व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार, अनासक्ति और अंततः निर्वाण की ओर ले जाता है। बौद्ध दर्शन में चेतना को आत्मा के रूप में नहीं देखा गया है, बल्कि यह विज्ञान स्कंध का हिस्सा है। तथागत बुद्ध के अनुसार चेतना क्षणिक है और एक निरंतर प्रवाह की तरह कार्य करती है — जिसे विज्ञानधारा कहा जाता है। बौद्ध दर्शन में आत्मा का निषेध किया गया है, परंतु चेतना को अनुभव की एक धारा के रूप में स्वीकार किया गया है। यह चेतना विज्ञान स्कंध का एक भाग है और क्षणभंगुर मानी गई है। चेतना यहाँ किसी शाश्वत तत्व की बजाय अनित्य और कारण-परिणाम से उत्पन्न होने वाली प्रक्रिया है।

बौद्ध साहित्य में "विज्ञाना" शब्द का अर्थ है—ज्ञान या बोध की वह प्रक्रिया, जिसमें विषय (object) और इंद्रिय के संयोग से अनुभव उत्पन्न होता है। यह चेतना कोई स्थायी तत्व नहीं है, बल्कि यह कारण-कार्य की श्रृंखला के अनुसार उत्पन्न और लुप्त होती रहती है। बुद्ध ने कहा कि 'व्यक्ति' केवल पाँच स्कंधों (aggregates) का समुच्चय है। बौद्ध दर्शन के अनुसार चेतना पंचस्कंधों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, और विज्ञाना) में से एक है। इन पाँचों स्कंधों का संयोजन ही व्यक्ति या व्यक्तित्व को बनाता है। चेतना (विज्ञाना) का कार्य है ज्ञान या अनुभव को ग्रहण करना। यह किसी भी बोध का मूल आधार है, लेकिन यह स्वतंत्र नहीं होती—यह अन्य स्कंधों पर आधारित होती है। इनमें चेतना वह तत्व है जो इंद्रियों और उनके विषयों के संपर्क से उत्पन्न होता है। जैसे चक्षु + रूप → चक्षु-विज्ञाना, श्रोत्र + शब्द → श्रोत्र-विज्ञाना, आदि।

6. जैन दर्शन में चेतना

जैन दर्शन भारतीय दर्शनों में अद्वितीय स्थान रखता है, जो आत्मा, अहिंसा, और मोक्ष के मार्ग को प्रमुख मानता है। जैन दर्शन में चेतना का स्वरूप आत्मा के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। चेतना को आत्मा की मौलिक लक्षणात्मक विशेषता माना गया है। जैन दर्शन के अनुसार, चेतना आत्मा का अनिवार्य धर्म (गुण) है।

"उप्पन्ना विगमन्ता धम्मा सत्ताणं।"

– तत्त्वार्थसूत्र

यहाँ "धम्मा" अर्थात धर्म (गुण) से आशय है चेतना, जो आत्मा की पहचान है। जैन दर्शन में आत्मा (जीव) और अजीव (जड़) का विभाजन मुख्य आधार है। जीव वह है जिसमें चेतना होती है, और अजीव वह है जिसमें चेतना नहीं होती। चेतना के बिना आत्मा की कोई पहचान नहीं है। जैसे अग्नि का धर्म उष्मा है, वैसे ही आत्मा का धर्म चेतना है।

जैन दर्शन में चेतना के विभिन्न स्तरों का वर्णन मिलता है:

- **संसारी चेतना**: वह चेतना जो कर्मों के बंधन में है। इसमें आत्मा जन्म और मृत्यु के चक्र में उलझी रहती है।
- **मोक्षगामी चेतना:** यह वह चेतना है जो आत्मज्ञान और संयम के माध्यम से शुद्धता की ओर बढ़ रही होती है।
- **सिद्ध चेतना:** यह चेतना पूर्णतः मुक्त होती है – कर्मों से रहित, अखंड, शुद्ध और अनन्त।

जैन दर्शन में चेतना की शुद्धि के लिए "सम्यक दर्शन", "सम्यक ज्ञान" और "सम्यक चरित्र" को आवश्यक माना गया है। ये तीनों मिलकर आत्मा को उसकी शुद्ध चेतना की अवस्था तक पहुँचाते हैं। जैन मान्यता के अनुसार, आत्मा पर कर्मों का बंध होता है, जो उसकी चेतना को मलिन कर देता है। कर्म एक प्रकार का सूक्ष्म पुद्गल (पदार्थ) होता है, जो आत्मा के साथ संयोग कर उसे सांसारिक बंधनों में बाँध देता है।

"कर्म मलिन चेतना का आवरण है। जब यह हटता है, तभी आत्मा अपनी असली चेतनस्वरूप अवस्था को प्राप्त करती है।"

इस बंधन को हटाने के लिए तप, संयम, ध्यान और आत्मनिरीक्षण का महत्व बताया गया है। जैसे-जैसे कर्म क्षीण होते हैं, चेतना और अधिक प्रकाशित, व्यापक और शांत होती जाती है।

निष्कर्ष: भारतीय दर्शन में चेतना को महज मानसिक या जैविक प्रक्रिया न मानकर अस्तित्व की मूल सत्ता के रूप में देखा गया है। यह चेतना आत्मा, ब्रह्म, पुरुष या विज्ञान के रूप में विभिन्न दर्शनों में अलग-अलग रूपों में प्रतिपादित होती है, परंतु सभी में यह एक गूढ़, सूक्ष्म और आधारभूत तत्व के रूप में प्रतिष्ठित है। चेतना की यह गहन अवधारणा भारतीय विचार परंपरा को विशिष्ट और गहन बनाती है।

सन्धर्भग्रन्थसूची

- शर्मा, चन्द्रधर (1995): भारतीय दर्शनः आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
- माधवाचार्य (1997): सर्वदर्शन संग्रह (उमाशंकर शर्मा ऋषि, हिन्दी अनुवाद), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी.
- देवराज, नन्द किशोर (2002): भारतीय दर्शन (सं०), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ.
- धर्मराजाध्वरीन्द्र (2010): वेदान्तपरिभाषा (व्याख्या-गजानन्द शास्त्री मुसलगांवकर), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी.
- शंकराचार्य, आदि (2011): ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम् (स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, हिन्दी व्याख्या), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली.
- Pandey, S.L. (1987): Problems of Depth Epistemology, Ram Nath Kaul Library of Philosophy, University of Allahabad, Allahabad.
- Indich, William M. (2000): Consciousness in Advaita Vedanta, Motilal Banarasidass, Delhi.